४

आसोज शुक्ल १०, शुक्रवार, १६-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-१८३, १८४, १८९, १९५, १९८, प्रवचन - २१

.... समझ में आया ? .... ऐसा कहते हैं। पहली चीज़ आत्मा ध्यान करने योग्य क्या चीज़ है और ध्यान क्या चीज़ है, ध्याता कौन है और ध्यान का फल क्या है और पर्याय एवं द्रव्य क्या चीज़ है—ऐसी पहली समझ बिना, यथार्थ निर्णय बिना, सम्यग्दर्शन बिना ऐसा ध्यान होता नहीं। कहो, समझ में आया ? कहते हैं, देखो ! १८३

पिण्डस्थ ज्ञान पिण्डस्य, स्वात्मा चिन्ता सदा बुद्धै।
निरोधं असत्य भावस्य, उत्पाद्यं शास्वतं पदं॥१८३॥

दूसरा श्लोक।

आत्मा सद्भाव आरक्तं, पर द्रव्यं न चिन्तये।
ज्ञान मयो ज्ञान पिण्डस्य, चेतयन्ति सदा बुद्धै॥१८४॥

पिण्डस्थ ध्यान.. पहला शब्द है न अन्वयार्थ में ? पिण्ड अर्थात् शरीर। उसमें स्थ अर्थात् रहा हुआ। आत्मा शरीर में रहा हुआ, उसका ध्यान करना, उसका नाम पिण्डस्थ ध्यान है। नाम सुने नहीं हो। यह श्रावक को कहते हैं, पण्डितजी ! संसार का आर्तध्यान और रौद्रध्यान करते हैं या नहीं ? ये व्यापार-धन्धा आदि क्या है ? आर्तध्यान है या नहीं ? आर्तध्यान-आर्तध्यान है, पापध्यान है। व्यापार-धन्धा आदि का परिणाम आर्तध्यान-पापध्यान है। राग में एकाग्रता है न।

श्रावक उसको कहते हैं कि श्रावक का आचार, उसकी पर्याय में आचार। पर्याय में-अवस्था में-कैसा होता है ? पहले आत्मा क्या चीज़ है, सर्वज्ञ क्या कहते हैं ? देह से

भिन्न पिण्डस्थं। पिण्ड अर्थात् शरीर, उसमें रहा हुआ भगवान आत्मा। कहो, समझ में आया? '**पिण्डस्थ ज्ञान पिण्डस्य।** शरीर पिण्ड में रहा हुआ मैं अकेला ज्ञान का पिण्ड हूँ। पिण्ड को क्या कहते हैं? तुम्हारी भाषा में (क्या) कहते हैं? पिण्ड कहते हैं। ऐसा लड्डू का पिण्ड होता है न? ऐसे आत्मा... अनन्त आत्मा अनन्त भिन्न-भिन्न। मेरा आत्मा कैसा है, यहाँ ध्यान करने के योग्य है? देखो! यहाँ पंचम गुणस्थान में ध्यान करने योग्य कहा है। वे लोग कहते हैं, चौथे-पाँचवें में कुछ नहीं होता। वह तो आगे मुनि को सातवें (गुणस्थान में) होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छठ्ठे में भी नहीं होता।

भाई! देखो! तारणस्वामी क्या कहते हैं? पहले आत्मा श्रावक उसको कहना कि अपना आत्मा, देह का रजकण, कर्म का अस्तित्व है, परन्तु उससे मैं भिन्न हूँ। और पर्याय में पुण्य-पाप का, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध का राग होता है, उससे भी मैं भिन्न हूँ। और मेरा अन्तर अनन्त ज्ञान, दर्शन, शान्ति आदि स्वभाव से मैं अभिन्न हूँ। ऐसा पहले निर्णय में सम्यग्दर्शन होना चाहिए। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन बिना ऐसा ध्यान होता नहीं। श्रावकाचार सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं। क्या कहा? देखो!

पिण्डस्थ ध्यान '**ज्ञान पिण्डस्य**' ज्ञान समूहरूप आत्मा का ध्यान है। '**ज्ञान पिण्डस्य**' दूसरा शब्द पड़ा है न? '**ज्ञान पिण्डस्य**'। अकेला चेतन्यपुंज मैं हूँ। अनन्त गुणमय हूँ। उसके साथ अविनाभावी, चैतन्य के साथ अनन्त गुण हैं। वह मैं ही भगवान हूँ। शरीर में विराजमान मैं ही पिण्डस्थ परमात्मा हूँ। बहुत जिम्मेदारी। यह तो श्रावक हो गया, लो! समझे बिना श्रावक की क्रिया थोड़ी करे, ऐसा करे, वह श्रावक नहीं है। यह श्रावकाचार का वर्णन है।

मुमुक्षु : जैनकुल में...

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनकुल में जन्मा, इसलिए जैन हो गया, लो!

पहले चीज़ क्या है? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव किसको आत्मा कहते हैं? कैसा आत्मा है? कितनी शक्ति अन्दर है? शक्ति गुण है, शक्तिवान द्रव्य है और यह

ध्यान उसकी पर्याय है। ध्यान उसकी पर्याय है। समझ में आया? ध्यान की दशा को पर्याय कहते हैं। वह पर्याय किसमें स्थित होने से ध्यान होता है? कि '**ज्ञान पिण्डस्य**'। ज्ञान का पिण्ड अनन्त गुण का स्वरूप मेरा स्वभाव, मेरा धाम चैतन्य। 'ज्यां चैतन्य त्यां अनन्त गुण, केवली बोले ऐम।' भगवान की वाणी में आया, जहाँ चैतन्य है, वहाँ अनन्त गुण अन्दर धाम में विराजमान है। ऐसा पहले दृष्टि में, दर्शन में निर्णय किया हुआ हो, उसके बाद '**ज्ञान पिण्डस्य**' ध्यान करता है। ओहोहो! देखो! यह ध्यान करना श्रावक का आचार (है)।

वे लोग कहते हैं, षट् कर्म। भगवान के दर्शन करना, गुरु की सेवा करना... ऐसे षट् कर्म आते हैं न? वह तो विकल्प है, वह तो राग है। वह श्रावक का आचार नहीं। वह तो, यह निश्चय आचार हो तो विकल्प को व्यवहार आचार कहने में आता है। यह निश्चय आचार नहीं हो, अकेला विकल्प आचार हो तो उसको व्यवहार आचार भी नहीं कहने में आता। डालचन्दजी! यहाँ थोड़ा समझना पड़ेगा, हों! यहाँ फुरसत लेकर आये हैं न। दिवाली आयेगी तो वापस जाएँगे। नरम व्यक्ति हैं।

मुमुक्षु : ... निकाल के करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवश्यक अर्थात् अवश्य करनेयोग्य, जरूर करने लायक। श्रावक को जरूर करने लायक, उसका नाम आवश्यक है। षट् आवश्यक तो विकल्पवाला शुभराग है। पण्डितजी! निश्चय आवश्यक हो, उसको षट् आवश्यक व्यवहार से कहने में आता है।

मुमुक्षु : यह परम आवश्यक हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परम आवश्यक है। ठीक कहते हैं। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, ज्ञान समूह। ओहोहो! एक समय का ज्ञान पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. अचिन्त्य स्वभाव वह मैं, मेरा स्वभाव पूर्ण ज्ञान हूँ। बुद्धि-बुद्धिमानों के द्वारा, देखो! बुद्धिमान क्यों लिया? ज्ञानी द्वारा। अज्ञानी द्वारा ऐसा ध्यान होता नहीं। श्रावक हुआ है, सम्यग्दृष्टि हुआ है तो वह शब्द लिया है। है न? बुद्धि। बुद्धि शब्द लेने का कारण है कि श्रावक सम्यग्दृष्टि है। आत्मा का राग से, पर से, शरीर से पूर्णानन्द स्वरूप भिन्न है, ऐसा भान हुआ है। उसको यहाँ बुद्धि—ज्ञानी कहने में आया है।

ये बुद्धि-बुद्धिमानो, उसको बुद्धिमान कहते हैं। अपना आत्मा ज्ञान में, दर्शन में, प्रतीत में लिया है, उसको यहाँ बुद्धिमान कहते हैं। दूसरी बुद्धि को यहाँ बुद्धिमान कहते नहीं। धर्मचन्दजी! सदा। देखो! निरन्तर, निरन्तर। अन्तर स्वरूप मैं विकल्परहित, रागरहित, भेदरहित मान, वाणी, देह के संगरहित पूर्ण शुद्ध हूँ, ऐसा पहले ज्ञान, सम्यग्दर्शन तो हुआ है, बाद में निरन्तर स्वात्म चिन्ता-अपने आत्मा का ध्यान करना योग्य है। आत्मा, वह तो द्रव्य पूर्ण शुद्ध हुआ और चिन्ता, वह ध्यान हुआ, वह पर्याय हुई। समझ में आया? चिन्ता अर्थात् विकल्प की बात यहाँ नहीं है। चिन्ता का अर्थ यहाँ विकल्प नहीं है। आत्मा एक समय में पूर्ण स्वरूप, उसका ध्यान, उसका नाम यहाँ चिन्ता कहने में आया है। अभी तो वस्तु समझ में आयी नहीं तो ध्यान किसका करे? समझ में आया? फिर ऐसे ही बैठकर, ओम, ओम, ओम, णमो अरिहंताणं.. सामायिक... तत्त्वेषु मैत्री, गुणषु प्रमोदं... वह सामायिक। वह सामायिक नहीं है। सामायिक तो पहले अपना स्वरूप अनुभव में सम्यग्दर्शन में आया हो, बाद में ध्यान करते हैं तो उसको सामायिक होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग लगा, विकल्प में लगे। कहाँ लगे? सामायिक ली है। गाथा-३१४ में सामायिक लिया है। ३१४ है। मिथ्या सामायिक की बात की है, देखो!

अनेक पाठ पठनंच, वन्दना श्रुत भावना।
सुद्ध तत्त्वं न जानन्ते, सामायिक मिथ्या उच्यते॥३१४॥

पण्डितजी! पढ़ते नहीं, दरकार करते नहीं और ऐसे ही जीवन चला जाए और (माने कि) हम धर्म करते हैं। यह कहते हैं, देखो! '**अनेक पाठ पठनंच**' अनेक पाठों का पढ़ना, वह भी विकल्प है। '**वन्दना श्रुत भावना**'। भगवान की वन्दना करना, गुरु की वन्दना करना, शास्त्र की भावना करना, ये सब विकल्प है, राग है। यदि '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते**', ऐसा करने पर भी, शास्त्र पढ़ने पर भी और वन्दना, शास्त्र की शुद्ध भावना-बारम्बार वांचन करने पर भी '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते**' शुद्ध ज्ञानानन्द मेरे स्वरूप में अनन्त गुण भरे हैं, मैं ही परमात्मस्वरूप से भरा हूँ, ऐसा शुद्ध तत्त्व का ज्ञान नहीं है तो वह सामायिक मिथ्या कहलाती है। है? समझ में आया? सामायिक करते हैं। किसकी सामायिक? तुझे अभी तत्त्व की तो खबर नहीं। मिथ्या सामायिक है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अनादि से करता है। समझ में आया? देखो! तारणस्वामी क्या कहते हैं, खबर नहीं तुम्हें और मैं तारण समाज है, तारण समाज है। परन्तु क्या कहते हैं खबर नहीं। बराबर है या नहीं?

कहते हैं कि तेरी चीज़ '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते**'। भगवान आत्मा मैं पवित्र ज्ञान, आनन्द शुद्ध निर्विकल्प परमात्मा हूँ। पर्याय में मेरी दशा भले मलिन हो, लेकिन मेरा स्वभाव मलिन नहीं, ऐसा अनुभव दृष्टि में आया। ऐसा शुद्ध तत्त्व यदि ज्ञान में नहीं आया, विचार में नहीं आया, प्रतीत में नहीं आया, दर्शन में नहीं आया, वह सामायिक करने बैठता है (तो) वह '**सामायिक मिथ्या उच्यते**'। वह सामायिक मिथ्यादृष्टि की मिथ्या है। सामायिक है नहीं। समझ में आया? बहुत बात की है। यहाँ तो सामायिक याद आ गयी।

देखो, यहाँ चलते अधिकार में क्या कहते हैं? '**स्वात्म चिन्ता**'। चिन्ता का अर्थ यहाँ विकल्प नहीं है। स्वरूप पूर्ण ज्ञान, आनन्द जो पहले निर्णय सम्यक् में हुआ है, वह आत्मा के झुकाव में अपनी पर्याय में द्रव्य की ओर झुकाव, ध्यान। असत्य भाव से निरोध। देखो! क्या कहते हैं? एक तो स्वात्मा ध्रुव त्रिकाल ज्ञायकभाव अनन्त गुण का पिण्ड। देखो! इसमें तीन बोल लेते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों लेते हैं। क्या कहते हैं? ध्रुव स्वात्मा ज्ञायक त्रिकाल अनन्त गुण का पिण्ड। चिन्ता, वह पर्याय है-उत्पाद। उसको विशेष कहते हैं। असत्य भाव से निरोध। विपरीत राग और द्वेषादि भाव का व्यय। समझ में आया? पुण्य और पाप का विकल्प राग है, उसका व्यय। और '**उत्पाद्यं सास्वतं पदं**'। अविनाशी मोक्षपद पाना योग्य है। वह उत्पाद। एक गाथा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों ले लिये हैं। समझ में आया? (यह) जैनदर्शन के सिवाय तीन काल में कहीं हो सकता नहीं। दूसरे के साथ मिलान करते हैं, लो, यहाँ है। तारणस्वामी ने कहा है, फलाने ने कहा, ढीकना ने कहा। यह तो जिनाज्ञा अनुसार जिनागम अनुसार एक-एक शब्द है। समझ में आया? दूसरी जगह, दूसरे के साथ मिलान करे कि ... है, फलाने के साथ है, उसके साथ है,... वह तत्त्व का बड़ा अन्याय करता है। समझ में आया?

क्या कहा? देखो! एक तो आत्मा वस्तु, उसका ध्यान करके पर्याय उत्पन्न हुई।

अब क्या कहते हैं ? असत्य भाव पुण्य-पाप का विकल्प उत्पन्न नहीं होता है, व्यय होता है। और वह ध्यान करके क्या हो जाता है ? '**उत्पाद्यं सास्वतं पदं**'। निर्मल पर्याय उत्पन्न होकर केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यह केवलज्ञान उत्पाद पर्याय है। समझ में आया ? वस्तु त्रिकाली है, उसकी ध्यान पर्याय निर्मल है, यह करते-करते विकार का व्यय हो जाता है और केवलज्ञान मोक्षपर्याय का उत्पाद होता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्, एक गाथा में तीनों सिद्ध किये। समझ में आया ? अपने आप पढ़े तो कुछ समझ में आये ऐसा नहीं है। ऐसे ही तुम्बड़ी में कंकर लगे। सेठ ! समझने की चीज़ क्या है, सर्वज्ञ आज्ञा अनुसार, जिनागम अनुसार आत्मा किसको कहते हैं, उसका उत्पाद-व्यय-ध्रुव कैसा है, ऐसा समझे बिना उसका अर्थ यथार्थ होता नहीं। समझ में आया ?

अविनाशी मोक्षपद पाना योग्य है, देखो ! '**आत्मा सद्भाव आरक्तं**' अपने सत् स्वभाव में लवलीन हो जावे। यह तो श्रावकाचार में कहा है। आहा ! अपना आत्मा ध्यान के काल में अपने स्वभाव में आरक्त-आरक्त, आ-समस्त प्रकार से लीन हो जाए। वह पर्याय हुई। '**पर द्रव्यं न चिंतये**'। परद्रव्य की चिन्ता मिट जावे। अरिहन्त, अरिहन्त, सिद्ध, सिद्ध, ओम, ओम, ये सब परद्रव्य हैं। ओम, ओम, ओम.. ये सब तो विकल्प है, परद्रव्य है। अरिहन्त है, अरिहन्त का ध्यान, अरिहन्त का ध्यान, अरिहन्त-सिद्ध परद्रव्य हैं। भगवान का समवसरण परद्रव्य है। आत्मा से पंच परमेष्ठी परद्रव्य भिन्न हैं। समझ में आया ? तो '**पर द्रव्यं न चिंतये**'। भारी बात भाई ! श्रावक के लिये ऐसी जिम्मेदारी !

मुमुक्षु - '**पर द्रव्यं न चिंतये**' तो धर्म कब होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कब होगा ? धूल में शरीर से धर्म होता है ? शरीर की क्रिया से धर्म तो नहीं, दया, दान का विकल्प आता है, ओम.. ओम.. ओम.. वह विकल्प है, उससे भी धर्म नहीं है। वह तो राग है। समझ में आया ?

'**पर द्रव्यं न चिंतये**' परद्रव्य का राग-विकल्प नहीं करना। ऐसे अरिहन्त हैं, ऐसे सिद्ध हैं, ऐसे पंच परमेष्ठी हैं, ऐसे गुरु हैं और ऐसा शास्त्र है, वह सब परद्रव्य है। देव-गुरु-शास्त्र भी आत्मा से परद्रव्य है। वाणी भी आत्मा से परद्रव्य है। तो कहते हैं, '**पर द्रव्यं न चिंतये**'। भारी बात, भाई ! ज्ञान में-समझ में यह बात न ले, उसका अनुभव और दृष्टि

कहाँ-से हो ? और ध्यान तो कहाँ-से हो ? ख्याल भी नहीं है चीज़ का। परद्रव्यं-परद्रव्य की चिन्ता मिट जावे। परद्रव्य की चिन्ता का अर्थ, वह तो लम्बी (बात है)। परन्तु '**पर द्रव्यं न चिंतये**' ऐसा लिया है। अपने सिवाय कोई भी स्त्री, कुटुम्ब, परिवार या देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य का विकल्प नहीं किया जावे, बुद्धि-पण्डितों के द्वारा। कहो, समझ में आया ?

वह शब्द पड़ा है, भाई ! पहले में भी '**सदा बुद्धै**' था। १८४ में भी '**सदा बुद्धै**' अन्तिम पद में है। उसमें प्रथम पंक्ति में था। ऐसा कहने का कारण क्या है ? पण्डितों द्वारा। पण्डितों का अर्थ पढ़ा-लिखा है, ऐसा नहीं। बुद्धि का अर्थ किया। आत्मा और उसकी शक्तियाँ अन्तर में क्या है, उसका भान हुआ, उसका नाम यहाँ पण्डित कहने में आया है। पहले कहा था न ? '**सदा बुद्धै**' ? यहाँ भी '**सदा बुद्धै**' (कहा है)। लोगों को बहुत ... लगे। समझ में आया ?

बुद्धि-ज्ञानियों द्वारा। वास्तव में तो बुद्धि का अर्थ यह है-ज्ञानियों द्वारा। सम्यग्ज्ञानी द्वारा। अपने स्वभाव का बोध-भान हुआ है, ऐसे सम्यग्ज्ञानियों द्वारा '**ज्ञान मयो ज्ञान पिण्डस्य चिंतयंति**'। ज्ञानमय ज्ञानघन आत्मा का ही चिन्तवन है। समझ में आया ? '**ज्ञान पिण्डस्य**' कहा न ? उसका अर्थ घन किया। ज्ञानमयी। इतना शब्द है न ? '**ज्ञान मयो ज्ञान पिण्डस्य**'। १८४। ज्ञानमय ज्ञानघन। ज्ञानमय-अकेला ज्ञान का घन पुंज है। ऐसा आत्मा, उसका चिन्तवन अर्थात् एकाग्रता अन्तर में पर्याय से लीन होना, उसका नाम श्रावकाचार का ध्यान कहने में आता है। कहो, समझ में आया ? १८९। वह भी दो (गाथाएँ) हैं। रूपातीत की बात है। समझ में आया ? अब रूपातीत ध्यान। श्रुतज्ञान के आधार से अरिहन्त का ... शुद्ध आत्मा का स्वरूप विचार करे। यह तो व्यवहार है। यहाँ तो अन्दर के निश्चय की बात की है।

रूपातीत व्यक्त रूपेन, निरंजनं ज्ञानमयं ध्रुवं।
मति श्रुत अवधि दिष्टं, मनपर्यै केवलं ध्रुवं॥१८८॥
अनन्त दर्शन ज्ञानं, वीर्य अनन्त सौख्यं।
सर्वज्ञं सुद्ध द्रव्यार्थं, शुद्धं सम्यक्दर्शनं॥१८९॥

रूपातीत ध्यान। मूर्तिकरहित, रागरहित अपना स्वरूप रूपातीत सिद्ध समान। सिद्ध समान अपने स्वरूप को यहाँ रूपातीत कहने में आया है। '**रूपातीत**'—रूपरहित '**व्यक्त रूपेन**' प्रगटरूप से जैसा सिद्ध है प्रगटरूप से, वैसा ही मैं हूँ।

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या। समझ में आया ? शक्तिरूप में तो अनन्त दर्शन, ज्ञान आदि जितने शुद्ध गुण हैं, वह मेरी शक्ति में पड़े हैं। मैं परिपूर्ण आठ गुणों से अलंकृत (हूँ)। आता है न ? भाई ! नियमसार। नियमसार में आता है न ? आठ गुण। पर्याय न ? ... अपने आत्मा में अन्दर पेट में, अन्तर पेट में ज्ञान के उदर में, शक्ति के उदर में आठ गुण, जैसे सिद्ध हैं, वैसे मेरे में पड़े हैं। समझ में आया ? यह तो जैन में जन्म लिया। जैन परमेश्वर क्या कहते हैं और क्या गुरु कहते हैं, क्या शास्त्र कहते हैं, भगवान जाने। भगवान तो जानते ही है न।

कहते हैं, रूपातीत ध्यान प्रगटरूप से सर्व मैल से रहित। कहो, समझ में आया ? कर्म-कर्म उसमें है नहीं, ऐसा मैं आत्मा (हूँ), मेरा कर्म से सम्बन्ध है नहीं। वर्तमान में कर्म से सम्बन्ध है नहीं। शरीर, कर्म से सम्बन्ध है ही नहीं। पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। न हो तो सम्बन्ध रहित दृष्टि होती नहीं। सम्बन्ध है, मेरे स्वभाव के साथ सम्बन्ध नहीं है। व्यवहार हो गया। व्यवहार का निषेध किया। कर्म मैल से रहित, '**ज्ञानमयं ध्रुवं**'। मैं तो ज्ञानस्वरूप अविनाशी आत्मा होता है, मैं अविनाशी आत्मा हूँ। कहो, समझ में आया ? जहाँ मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल.. देखो ! तारणस्वामी ने ज्ञान की पाँच पर्याय ली है। आत्मा त्रिकाल है—द्रव्य; उसमें ज्ञानगुण त्रिकाल है, वह शक्ति; उसकी पर्याय पाँच है, वह अवस्था। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों ले लिये हैं। आत्मा वस्तु है, वह द्रव्य त्रिकाल। उसमें अनन्त शक्तियाँ। उसमें ज्ञानगुण है। वह गुण ध्रुव शक्ति है। उसकी पर्याय, ज्ञानगुण की पाँच पर्याय है। पर्याय समझते हो ? डालचन्दजी ! पर्याय-अवस्था। जैसे सोने की डली होती है, फिर कुण्डल-कड़ा ऐसी अवस्था होती है। ऐसे आत्मा वस्तु (है), ज्ञानस्वभाव त्रिकाल ध्रुव गुण, और वर्तमान उसकी मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल, ये पाँच पर्याय (है)। ऐसा आत्मा जानकर,... क्या कहते हैं ? देखो ?

ये पाँचों एकरूप नित्य दिखलायी पड़ते हैं। पाँच में भेद नहीं देखना। भाई ! निर्जरा

की गाथा है न ? २०४। वह शैली है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय.. ये शैली है। मूल तो समयसार में से (चली आयी है)। २०४ गाथा है न ? पाँच पर्याय नहीं देखना। पाँच पर्याय एक को अभिनन्दन करती है। आता है न ? निर्जरा अधिकार में आता है। वैसे आत्मा... पाँच पर्याय पर भेद पर लक्ष्य नहीं करना। ओहोहो ! कठिन बात, भाई ! समझ में आया ? पाँच भेद होने पर भी त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव में एकाग्र होने से पाँच का भेद मालूम नहीं होता। वे पाँचों अभेद को अभिनन्दन करते हैं। स्वभाव ओर की एकता के पाँच होने पर भी अभेद को अभिनन्दते हैं। आहाहा ! कठिन बात। पाठ लिया न ? '**मति श्रुत अवधि दिष्टा, मनपर्यै केवलं ध्रुवं**' है। परन्तु एकरूप दिखलायी पड़ता है। पाँच भेद नहीं। स्वरूप की दृष्टि करने से और अन्तर्मुख ध्यान करने से पाँच पर्याय का भेद नहीं दिखता। है सही। समझ में आया ? होने पर भी वहाँ पर्यायदृष्टि नहीं है। वस्तु पर दृष्टि है तो पाँच पर्याय का लक्ष्य नहीं करके अभेद ध्रुव अकेला आत्मा देखते हैं। उसमें दृष्टि लगाना। उसका नाम श्रावक आचार का धर्मध्यान कहने में आया है। समझ में आया ?

अनन्त दर्शन। देखो ! पर्यायभेद लिया ? नहीं। अन्दर में देखा क्या ? अनन्त दर्शन। वस्तु बेहद ज्ञानस्वरूप ध्रुव (है)। यह तो कथन करना है न। बाकी अनन्त ज्ञान और दर्शन, ऐसा भेद भी अन्दर नहीं है। समझ में आया ? समझने में क्या कहे ? समझने की भाषा ऐसी है। तो कहते हैं कि पाँच पर्याय का ध्यान (नहीं), एकरूप देखना। एकरूप में अन्दर क्या है ? अनन्त ज्ञान। पहले अनन्त दर्शन लिया है। अनन्त दृष्टा शक्ति आत्मा में एकरूप ध्रुव पड़ी है। अनन्त ज्ञान। दर्शन है अभेद है। अभेद का मतलब वह स्व-पर को भिन्न नहीं जानता। एकरूप देखता है। ऐसी शक्ति आत्मा में है। ज्ञान का अर्थ प्रतिच्छिद है। परिछिन्न। प्रत्येक द्रव्य, गुण, पर्याय को भिन्न-भिन्न करके जाने, उसका नाम ज्ञान। दर्शन कोई द्रव्य-गुण का घ्भेद नहीं करके सामान्य सत्ता अवलोकन उपयोग को दर्शन कहते हैं। ज्ञान भिन्न-भिन्न जाने। ये द्रव्य है, ये गुण है, ये पर्याय है। भेद नहीं। परन्तु भेद जानने का स्वभाव उसका है। ऐसा ज्ञान अनन्त ज्ञान मेरे में पड़ा है। स्व-पर को सबको देखे-जाने।

अनन्त वीर्य। मेरे स्वरूप में अनन्त बल है। शक्ति अनन्त वीर्य है। अनन्त स्वचतुष्टय की रचना करे, ऐसा मेरा सामर्थ्य है। ऐसा द्रव्य का ध्यान करे, वस्तु का ध्यान करे। अपना स्व पदार्थ का समकिती को निर्णय हुआ है, बाद में ऐसा ध्यान करता है। अनन्त सुखमय

है। भीखाभाई! इसमें तो बाहर का सब छूट जाता है। आहाहा! ... कहो, समझ में आया? यह बात मीठी लगे। निश्चय की है न। ... लगता है? यह तो अकेली वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी ध्यान।

कहते हैं, रूपातीत ध्यान करनेवलाा कैसा होता है? .. वर्णन किया है। कोई कहता है, मुनि के आचार में ऊपर के शुक्लध्यान की बात है, ऐसा नहीं। डालचन्दजी! देखो न, इसीलिए तो श्रावकाचार लिया है। पहले यह लो, बाद में ज्ञानसमुच्चयसार, उपदेशशुद्ध सार पीछे-पीछे आयेगा। बहुत समय हो गया न। थोड़ा उसमें से ले ले। श्रावक का आचार। पंचम गुणस्थान का निश्चय सत्य आचार क्या है? उसका वर्णन है। आचार पर्याय है। श्रावकाचार की पर्याय है, द्रव्य-गुण त्रिकाली है। त्रिकाली द्रव्य-गुण में एकाकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान होकर विशेष ध्यान करना, वह श्रावक का आचार-पर्याय निर्मल निर्विकल्परूप पर्याय श्रावक का निश्चय आचार है। बीच में विकल्प हो, वह व्यवहार है। समझ में आया? शुभराग हो। नाम स्मरण, वाणी का बहुमान, भगवान का बहुमान, पंच परमेष्ठी का ... हो, सब विकल्प है, शुभराग है, पुण्यबन्ध का कारण है। निश्चय आचार हो तो उसको व्यवहार आचार का आरोप देने में आता है। निश्चय यहाँ नहीं है, तो व्यवहार भी उसको नहीं है। व्यवहाराभास है। समझ में आया?

अब, जैनदर्शन आत्मा को सब ... साथ मिलाते हैं। पण्डितजी! है? समन्वय। नानक, कबीर, उसे गन्ध भी कहाँ थी, क्या द्रव्य है और क्या वस्तु है। छह द्रव्य खबर थे नानक और कबीर को? अरे! ... स्थानकवासी में। उसे कुछ खबर नहीं। एक सम्प्रदाय की रीत में मूर्ति को ... अध्यात्म हो गया। सम में आया? अभ्यास नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ... सब बातें.. वैरागी व्यक्ति था। वेदान्त की दृष्टि। अद्वैत एक आत्मा। बस। ये चीज़ क्या है? गन्ध भी नहीं है। क्या कहते हैं? देखो!

वीर्य अनन्त और अनन्त सुख। मेरे आत्मा में बेहद (सुख भरा है)। पहले श्रद्धा करे, हों! विचार करे, तब तक भी विकल्प है। लेकिन ऐसे आत्मा में एकाग्र होना, उसका नाम ध्यान है। पहले विचार में, मनन में, श्रद्धा में, ज्ञान में तो ले कि यह चीज़ ऐसी है।

इसके सिवा दूसरी चीज़ होती नहीं। उससे विरुद्ध की प्रशंसा, अनुमोदना, सम्मतपना चला जाए। एक आत्मा ऐसा परिपूर्ण परमात्मा मैं ही हूँ। मैं ही मेरे में ध्यान करने से मेरे परमात्मा की प्राप्ति होती है। परमात्मा दूसरे का ध्यान करने से अपना परमात्मा परमात्मा नहीं होता। समझ में आया? क्या कहा? देखो!

अनन्त सुखमय है। अब विशेष लिया। वह सर्वज्ञ है। यह आत्मा सर्वज्ञ है। ओहो! मैं सर्वज्ञ हूँ। द्रव्य में, हों! पर्याय में सर्वज्ञ हो तो ध्यान किसका? फिर ध्यान कौन करे? सर्वज्ञ को ध्यान होता है? कितनी बात ली है, देखो! एक तो ज्ञान की पाँच पर्याय ली कि पाँच पर्याय दिखती नहीं, अभेद। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य, अनन्त सुख। सर्वज्ञ। सर्वज्ञ है। मेरा आत्मा ही सर्वज्ञ है। सर्व को जाननेवाला। मेरी शक्ति पर को-स्व को पूर्ण तीन काल, तीन लोक, अपना त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय सबको जानने की शक्ति रखनेवाला सर्वज्ञ मैं हूँ। समझ में आया?

शुद्ध सम्यग्दर्शनं। शुद्ध आत्मपदार्थ है। ऐसा शुद्ध आत्मपदार्थ है, ऐसा अनुभव दृष्टि करना, यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है। है? पण्डितजी! '**सुद्धं द्रव्यार्थं, सुद्धं सम्यक्दर्शनं**'। ऐसा शुद्ध पदार्थ एकरूप अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, सुख, सर्वज्ञ ऐसी पूर्ण वस्तु में अनन्त शक्ति हैं। ऐसा आत्मा उसकी अन्तर में अनुभव करके प्रतीत-श्रद्धा, अनुभव करना, उसका नाम शुद्ध सम्यग्दर्शन है। शुद्ध का अर्थ सच्चा सम्यग्दर्शन है। शुद्ध का अर्थ निश्चय सम्यग्दर्शन है। निश्चय का अर्थ यथार्थ सम्यग्दर्शन है। कल्पित व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन यथार्थ है नहीं। समझ में आया?

निश्चय सम्यग्दर्शन हो, वहाँ व्यवहार उतना राग, देव-गुरु की श्रद्धा, भगवान की वाणी की बहुमानता, ऐसा विकल्प आता है। वह विकल्प है राग, उसको व्यवहार समकित कहना, वह उपचार से कहने में आता है। वास्तव में तो यह सम्यक् ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन दो नहीं है, सम्यग्दर्शन का भाव तो यह एक ही निश्चय सम्यग्दर्शन एक है। कहो, समझ में आया? १८९ हुई न? १९५। देखो! सम्यग्दृष्टि आचरण। सार-सार गाथा लिख ली है। क्योंकि बीच में तो ... थोड़ा-थोड़ा ख्याल में आ जाए कि क्या तारणस्वामी कहते हैं और वस्तु की स्थिति क्या है। अष्टपाहुड़ में दर्शनपाहुड़ में है, वह बात ली है।

लिंग च जिन प्रोक्तं, त्रितय लिंगं जिनागमे।
उत्तम मध्यम जघन्यं च, क्रिया त्रेपण संजुतं॥१९५॥

उत्तम जिनरुपि च, मध्यमं च मतं श्रुती।
जघन्य तत्त्वं सार्धं च, अविरत सम्यग्दृष्टितं॥१९६॥

देखो! अविरत सम्यग्दृष्टि इतने लिंग को मानते हैं और इतना अनुभव करते हैं, ऐसा कहते हैं।

लिंगं त्रिविधिं प्रोक्तं, चतुर्थ लिंग न उच्यते।
जिनशासने प्रोक्तं च, सम्यग्दृष्टि विशेषतः॥१९७॥

अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने लिया है, वह बात है। देखो! पहला शब्द लिया है, जिनागम में... पहली पंक्ति का दूसरा, वह पहले लिया है। जिनागम। पहला शब्द है न, पहली पंक्ति में। जिनशासन अन्त में आयेगा। जिनागम में वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर, सौ इन्द्र के पूजनीक, उनकी वाणी में। '**जिन प्रोक्तं**' '**जिन प्र उक्तं**' जिनेन्द्र भगवान के (द्वारा) कहे गये। परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने कहा, '**त्रितयं लिंगं**'। लिंग तीन है। उत्तम लिंग, मध्यम लिंग और जघन्य लिंग। तीन लिंग कहा, चौथा है नहीं। समझ में आया?

यह यथायोग्य ... क्रिया से संयुक्त होता है। उत्तम लिंग जिनेन्द्र का स्वरूप नग्न दिगम्बर। आत्मज्ञान, आत्मध्यान। स्वरूप, हों! अकेला द्रव्यलिंग नहीं। यहाँ कहते हैं ऐसे सम्यग्दर्शन का अनुभव और स्वरूप का ध्यान और चारित्र, निर्विकारी आनन्द के झूले में झूले। पर्याय में निर्विकार आनन्द, द्रव्य-गुण तो ध्रुव त्रिकाल है। ऐसे उग्र आनन्द के झूले में झूले, उसका बाह्य लिंग तो एक जिनेन्द्र नग्न दिगम्बर होता है। समझ में आया? जिनरूपी। जिन को कैसे वस्त्र आदि नहीं होते, वैसे मुनि को वस्त्र का एक धागा भी नहीं होता। समझ में आया?

'**मध्यम च मति श्रुतं**' मध्यम लिंग शास्त्र में कहा हुआ श्रावक का लिंग है। समझ में आया? वह पाँचवे की बात है। छठ्ठा, पाँचवाँ और चौथा ऐसे लिया है। समझ में आया? छठ्ठा मुनि का लिंग। अन्तर में चारित्र है, आनन्द है। छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं।

सच्चे मुनि हैं तो क्षण में छठ्ठा, क्षण में सप्तम, क्षण में छठ्ठा और क्षण में सप्तम (आता है)। ऐसी मुनि की दशा होती है। वह नग्न हो जाता है। सहज जड़ की दशा हो जाती है, करना पड़ता नहीं। कर्ता नहीं है। एक लिंग भगवान के शास्त्र में मुनि का यह गिना है। दूसरा लिंग श्रावक का। शास्त्र में कहा, मध्यम श्रावक का लिंग है। कहो, समझ में आया? रत्नत्रय साधन की अपेक्षा से यह बात की है, भाई! ऐसे तो तीन लिंग वहाँ कहे हैं।... जहाँ निश्चय में उतारा है न, वहाँ तो ऐसा कहा, साधु का लिंग एक, एक क्षुल्लक आदि का लिंग, एक आर्जिका का। तीन लिंग बाह्य। यहाँ अन्तर ध्यान में उतारा है। छठ्ठा, पाँचवाँ और चौथा। समझ में आया?

छठ्ठा गुणस्थान.. महा मुनि सन्त वनवासी। जंगल में आत्मा का... सर्वज्ञ ने कहा ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त करके चारित्र की रमणता में झुलते हैं, उसका एक दिगम्बर जिन लिंग (था)। जिन लिंग कहो या दिगम्बर लिंग कहो, जिन दिगम्बर थे। जिन को कोई वस्त्र आदि था नहीं। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा विराजते हैं नग्न। दूसरा श्रावक का लिंग है। पंचम गुणस्थानवाले। समझ में आया? यह अन्दर में भावलिंग की बात कहते हैं। पंचम गुणस्थान की दशा मध्यम लिंग है। छठ्ठे-सातवें की दशा उत्कृष्ट लिंग है। यहाँ अन्दर भावलिंग की बात है, हों! ओहो!

जघन्य लिंग '**तत्त्व सार्धं**'। तत्त्वबोधसहित। देखो! '**तत्त्व सार्धं**' है न? है या नहीं? '**उत्तम जिन रुचि च, मध्यम च मति श्रुतं। जघन्य तत्त्व सार्धं**'। सम्यग्दृष्टि नौ तत्त्व का यथार्थ बोध रखते हैं। समझ में आया? जड़ का जड़ भाव से, राग का राग भाव से, पुण्य को पुण्य भाव से, पाप को पाप भाव से, आत्मा को आत्मभाव से, आत्मा का आश्रय करके संवर, निर्जरा शुद्धि की वृद्धि हुई, वह संवर, निर्जरा भाव है। '**तत्त्व सार्धं**'। जिसका तत्त्वार्थ श्रद्धानं-तत्त्व की '**सार्धं**' श्रद्धा है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? अकेला तत्त्व नहीं है, तत्त्व नौ है। नौ तत्त्व के यथार्थ भानसहित सम्यग्दृष्टि हैं, अविरत सम्यग्दृष्टि हैं, अन्तर में अविरतपने का त्याग नहीं हुआ है। समझ में आया? फिर भी वह भगवान के शासन में जघन्य भावलिंग में गिनने में आया (है)। समझ में आया? ओहो!

'**लिंगं त्रिविधि प्रोक्तं**'। भगवान के आगम में, त्रिलोकनाथ के शासन में वीतराग

क्या है, भगवान परमात्मा। समझ में आया? प्रसिद्ध प्रसिद्ध दिमाग में आ गया। प्रसिद्ध सिद्ध है न? प्रसिद्ध सिद्ध। क्या है? परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ...अनादि से तीर्थंकर हैं। अनादि से होते आये हैं और अभी अनन्त काल होंगे। ऐसे भगवान के शासन में तीन प्रकार के लिंग कहे गये हैं। चौथा लिंग नहीं कहा गया है। बाह्य क्रियाकाण्ड है, राग को धर्म मानते हैं, पुण्य को धर्म मानते हैं, बाह्य का बाह्य लिंग है, वह चौथा लिंग है—ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बाह्य द्रव्यलिंग धारण किया नग्न मुनि का, श्रावक का बारह व्रत का विकल्प धारण किया हो। कोई चौथा लिंग शास्त्र में है ही नहीं। सम्यग्दर्शन का पहला लिंग, पंचम का दूसरा और छठ्ठे का तीसरा। ऐसे तीन लिंग वीतराग के आगम में कहे हैं। समझ में आया? इन तीन का भान नहीं और अकेली क्रियाकाण्ड, व्यवहार दया, दान, ब्रह्मचर्य व्रत, नियम का विकल्प और नग्नपना से बाह्य त्याग, वह चौथे लिंग में है, ऐसा है नहीं। वह लिंग ही नहीं है। समझ में आया? बाहर ... उतारा है, ये अन्तर में उतारा है। कोई ऐसे नहीं ले जाए कि हम श्रावक है, हम व्रत पालते हैं, इसलिए हम भी आते हैं। नहीं।

सम्यग्दृष्टि अविरत होने पर भी भावलिंग अन्तर अनुभव में है, वह जघन्य लिंग है। उससे आगे बढ़कर ध्यानादि में विशेष गति अन्तर में हुई है, दूसरे कषाय का नाश हुआ है। चौथे में अनन्तानुबन्धी कषाय का नाश हुआ है, मिथ्यात्व का नाश हुआ है। दूसरे अप्रत्याख्यान का नाश हुआ है। तीसरे में प्रत्याख्यान का नाश हुआ है। नाश तो हुआ, परन्तु अस्ति में स्वरूप की लीनता की उग्रता हुई है। समझ में आया? नाश हुआ, वह तो नास्ति कहा। परन्तु स्वरूप की स्थिरता की उग्रता में बहुत बढ़ गया है। वह तीन लिंग जिनशासन में गिनने में आये हैं।

'**चतुर्थ लिंग न उच्यते**' भगवान त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर के मार्ग में सम्यग्दृष्टि बिना, पंचम गुणस्थान बिना, छठ्ठे भावलिंग बिना किसी को मुनि अथवा श्रावक का लिंग कहने में आया है, ऐसा है नहीं। कठिन भाई! समझ में आया? यह श्रावकाचार का अर्थ चलता है। नहीं तो वह आगे ले जाए। यहाँ तो अविरत सम्यग्दृष्टि का पाठ है। आहाहा! समझ में आया? '**जिन शासने प्रोक्तं**' अधिक वचन दिया। उसमें कहा था, '**जिनागमे**'। '**जिनागमे**'। आगम में ऐसा कहा है। फिर से कहते हैं, '**जिन शासने प्रोक्तं**'। सर्वज्ञ

भगवान के शासन में तो इसे लिंग गिनने में आया है। समझ में आया? ओहो! हम व्रत तो पालते हैं न, ब्रह्मचर्य शरीर से पालते हैं न, चौविहार (रात्रिभोजन त्याग) तो ठीक करते हैं न, बाह्य से त्याग किया है तो हमारा तीन लिंग में से चौथा (लिंग) रहता है या नहीं? गाथा में से अर्थ (चलता) है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थान ही नहीं है, कितना क्या? इसलिए तो ये तीन बोल लिये हैं। **'लिंगं त्रिविधि प्रोक्तं, चतुर्थ लिंग न उच्यते'**। जिनागम में—जैनशासन में चौथा लिंग जगत में है ही नहीं। अकेला दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प और उसमें अपना धर्म मानता है, हम जैन में हैं (ऐसा मानते हैं)। नहीं। जैनशासन जिनागम में उसको लिंग ही नहीं कहा है। वह कुलिंग है। कुलिंग का अर्थ-देह का कुलिंग नहीं। देह में भले वस्त्र-पात्र छूट गये हो। समझ में आया? परन्तु विकल्प दया, दान, पंच महाव्रत के विकल्प में रुक गया और वही मेरा धर्म है, वहाँ रहा है, उसको यहाँ कुलिंगी कहते हैं। ओहोहो! कपड़े छोड़ दिये और नहीं छोड़े हैं तो कुलिंगी है, ऐसी यहाँ बात नहीं करते। कपड़े छूट गये हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो विकल्प से, समझ में आया? पंच महाव्रत, बारह व्रत (पालता हो), परन्तु आत्मा अन्तर विकल्प से भिन्न है, ऐसी दृष्टि अनुभव हुआ नहीं, सम्यक् हुआ नहीं (तो) पंचम नहीं, छठ्ठा नहीं है। उस चौथे लिंग को कुलिंग कहते हैं। लिंग में गिनने में, जैनशासन में गिनने में नहीं आया है। अन्य शासन में तो है नहीं, धर्म है ही नहीं। तीन काल तीन लोक में दूसरे में बात नहीं होती। चाहे नग्न साधु हो, जंगल में रहता हो, नग्न (होक) जंगल में रहता हो। हमने देखे हैं बहुत। समझे? जंगल में नग्न (रहे)। क्या है? मूढ़ है।

जिनलिंग नग्न हो और फिर भी पंच महाव्रत और अठ्ठाईस मूलगुण का राग हो, तो भी लिंग नहीं है, ऐसा कहा है। निश्चय अधिकार कहते हैं न। निश्चय अधिकार की शैली .... है। समझ में आया? अठ्ठाईस मुलगुण पाले, नग्न रहे, कोपीन रखकर क्षुल्लक रहे,...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह चीज़ ही नहीं। वह चीज़ ही नहीं है, लिंग ही

नहीं है। समझ में आया? लंगोटी लगाकर क्षुल्लक हो गया, और क्या कहते हैं? ऐलक, ऐलक। ऐलक होते हैं न?

अपना आत्मा एक समय में अखण्डानन्द प्रभु, अनन्त गुणराशि ऐसा द्रव्य, ऐसा शक्तियाँ—ऐसी अन्तर में प्रतीत, अनुभव सम्यग्दर्शन बिना ऐसे लिंग को जैनशासन में कोई लिंग में गिनने में नहीं आया है। लिंग कहो या सत्य कहो। असत्य में, कुलिंग में गिनने में आया है। आहाहा! लोंच कराते हो। छह महीने में परन्तु अन्तर राग, पुण्य, देह की क्रिया से मुझे लाभ होगा, हम दूसरे से तो निवृत्त हुये हैं न? नहीं? सेठ! दुकान में धन्धा करते थे, डालचन्दजी, पुत्र से निवृत्त हुआ हूँ, ऐसे तो मैं विशेष हूँ, ऐसा मान ले.. समझ में आया? भैया! नहीं, वह नहीं, वह नहीं। वह लिंग में ही नहीं है। आहाहा! कड़क बात लगती है, हों! तारणस्वामी की। बाह्य सम्प्रदायवालों को इसके साथ मेल खाये, ऐसा नहीं है। पण्डित तो ना ही कहते हैं, अभी के पढ़े हुए। अरे..! सुन न।

ये तो निश्चय की यथार्थ दृष्टि सहित का लिंग, लिंग। व्यवहार हो तो भले हो। अठ्ठाईस मूलगुण आदि, बारह व्रत का विकल्प आदि हो, उसको कौन ना कहता है? परन्तु वह यथार्थ लिंग नहीं है, सत्य लिंग तो यही है। आहा! समझ में आया? ध्यान रखना। गाथा का ऐसा अर्थ हुआ है। ... यहाँ उतरता है या नहीं?

चौथा लिंग नहीं कहा गया है। विशेष करके जिनशासन में सम्यग्दृष्टि का कहा गया है। देखो! सम्यग्दृष्टि का विशेष करके यही... है न? '**सम्यग्दृष्टि विशेषतः**' सम्यग्दृष्टि विशेषपने वही लिंग शास्त्र कहने में आया है। भगवान के शासन में, त्रिलोकनाथ के शासन में, गणधर के शासन में। ओहो! ... तुझे भाव नहीं है, तू है ही नहीं, कोई लिंग में नहीं है। सेठ! कड़क है यहाँ। तारणस्वामी कड़क हुए हैं जंगल में। यथार्थ कहा है, वह यथार्थ कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा ही कहते हैं, नहीं। अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड करनेवाला तुम धर्म में गिनने में आता है, बिल्कुल नहीं। मूढ़, अज्ञानी मूढ़ है। ऐसा कहा है। अज्ञानी मूढ़। पण्डित लोग तो ऐसा सुनकर तो ऐसा ही कहेंगे कि, ये निश्चयाभासी हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार को बताया है। निश्चय है तो व्यवहार बताया है।

समझ में आया? यह निश्चय से बात ली है। चौथे, पाँचवें, छठ्ठे को ही लिंग कहते हैं। विकल्प आदि में लिंग नहीं है। व्यवहार लिंग हो, निश्चय हो तो। परन्तु निश्चय बिना का अकेला बाह्य भेष धारण करे, ऐसा श्रावक का, मुनि का, क्षुल्लक का, ऐलक का, नग्नपना (धारण करे), भगवान के शासन में जिनागम में तारणस्वामी कहते हैं, हमारे कथन में, हमारे जैनशासन का कथन है, हमारे घर का नहीं। हमारे सभी शास्त्र में भी चौथा लिंग जिनशासन में नहीं है तो हम भी चौथा लिंग कहते नहीं। कहो, पण्डितजी! यह तो शब्द का अर्थ होता है। समझ में आया? ... समझे? ... १९८ आयी। ...

जघन्य अव्रतं नामं, जिन उक्तं जिनागमं।
सार्ध ज्ञानमयं शुद्धं, क्रिया दस अष्ट संजुतं॥१९८॥

देखो भाषा! जिन.. जिन.. जिन.. जिन.. (अज्ञानी कहता है), भगवान भगवान का जाने। हम हमारा। जघन्य लिंग का पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि है। जो '**जिन उक्तं**'। जिनेन्द्र ने कहा हुआ, जिनागम अनुसार। '**सार्धं**' है न? '**ज्ञानमयं सुद्धं**'। ज्ञानमय शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। ज्ञानमय शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। समझ में आया? वह अठारह क्रिया सहित होता है। नाम पीछे है। समझ में आया? उसकी १८ क्रिया होती है। चौथे गुणस्थान से १८ क्रिया होती है। पीछे व्यवहार लिया। देखो! कैसी कथन की पद्धति है! निश्चय लिया। चौथा लिंग नहीं है। चौथा गुणस्थान, पंचम गुणस्थान.. तीन लिंग। और तीन लिंग में '**जिन उक्तं**' में यह क्रिया होती है। दस अष्ट - १८। १८ में कुछ शुद्ध है, कुछ विकल्प की बात है। ऐसा निश्चय हो तो उसको व्यवहार कहने में आता है। निश्चय सहित का व्यवहार लिया है। समझ में आया? उसकी बात विशेष लेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)